विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।

यजु. 30–3

शब्दार्थ – विश्वानि – समस्त, देव – हे परमेश्वर, सवितः – उत्पादक, प्रेरक, संचालक, दुरितारिन – बुराईयों को पर सुव – दूर करो, यद् – जो, भद्रम् – कल्याणकारी उत्तम गुणकर्म स्वभाव है, तत् – उसे, नः – हमें, आ सुव – प्राप्त कराओ।

भावार्थ – सामान्य व्यक्ति ऐसा मानता ही नहीं है कि मेरे जीवन व्यवहार में बुराईयां है, कमियां है, दोष हैं, भूले हैं, जिनसे न केवल मैं स्वयं दुःख उठाता हूँ किन्तु मेरी इन बुराईयों से मेरे परिवार के लोग, आस–पास के लोग, गली–गांव के लोग, समाज राष्ट्र के लोग दुःखी होते हैं। जब व्यक्ति अपने आपको बुराईयों से रहित मानता है तो दूर करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। ऐसे व्यक्ति अन्यों के द्वारा बतायें गये दोषों को सुनते ही नहीं हैं अपने आपको बिलकुल ठीक मानते हैं।

91–स्वयं वाजिंनस्तन्वं कल्पयस्य स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।।

शब्दार्थ – स्वयम् – अपने आप, वाजिन् – ज्ञान, बल, क्रिया को चाहने वाले मनुष्य, तन्वम् – शरीर को, कल्पयस्व – सामर्थ्यवान बना, स्वयम् – आप ही, यजस्व – परिश्रम कर, स्वयम् – आप ही, जुषस्व – प्रेम पूर्वक सेना कर, महिमा – महत्त्व, यश, कीर्ति, प्रसिद्धि, ते – तेरी, अन्ये – औरों (दूसरों) से, न – नहीं, सन्नशे – प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ – परमपिता परमश्वर ने वेद के माध्यम से मनुष्यों को स्वावलम्बी बनने का आदेश किया है। स्पष्ट रू‍प से वेद मन्त्र में कहा है कि हे जीव तू यदि शरीर से सुदृढ़, बलवान्, निरोग, सुडौल, सुन्दर, आकर्षक लावण्ययुक्त बनना चाहता है तो स्वयं ही परिश्रम कर। कर्त्तव्य कर्मों को सम्पादित करने के लिए शरीर प्रथम मुख्य साधन है। सुदृढ़ शरीर से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि संभव है। रोगी, कृश, दुर्बल, व्यक्ति जीवन के उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु विशेष तपस्या करने की बात दूर रही, जीवन–यापन भी ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है। शरीर को आयुर्वेदानुसार आहार, विहार, व्यायाम आदि से सम्बन्धित उत्तम निर्देशों का पालन करते हुए पुष्ट, स्वस्थ, बल–युक्त बनाये रखें।

यहां कुछ गिने चुने पश्चिमी लेखकों की दयानन्द विषयक धारणाओं को संक्षेप में दिया जा रहा है –

(1) एण्ड्रू जैक्सन डेविस–अमेरिका के इस विचारक और दार्शनिक ने ऋषि दयानन्द को मानव प्रेमरूपी अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाला बताते हुए एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया था। इस लेख का मुख्य अंश इस प्रकार है –

''यह पवित्र प्रेमाग्नि भारतवर्ष के एक पवित्र योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में जाग्रत हुई थी। उस स्रोत से यह अग्नि पौरस्त्य देशों की जाज्वल्यमान आत्माओं में सक्रमित हुई। हिन्दू और मुसलमान इस दिव्य अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर वेग से दौड़ पड़े, किन्तु यह इतनी तीव्रता से बढ़ती गई, जिसका अनुमान इसके प्रकाशकर्त्ता दयानन्द को भी नहीं था। एशिया के इस नये प्रकाश (दयानन्द) को बुझाने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ ईसाई भी आ गये, परन्तु यह स्वर्गीय अग्नि तब तक जलती रहेगी, जब तक संसार के समस्त रोग, शोक, दुःख और सन्ताप इसमें जल कर भस्म नहीं हो जायेंगे। यहाँ तक कि रोग के स्थान पर नीरोगता, मिथ्याविश्वास के स्थान पर तर्क, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह ममत्व, नरक (दुःख) के स्थान पर सुख (स्वर्ग) तथा भूतप्रेतों के स्थान पर परमेश्वर का राज्य हो जायेगा। मैं इस अग्नि को मंगलकारी मानता हूँ। यह प्रेमाग्नि इस सुन्दर पृथ्वी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वजनिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।'' 1885 में प्रकाशित ग्रन्थ बियोण्ड दि वैली, पृ. 383.